अपना-अपना भाग्य

बहुत कुछ निरुद्देश्य घूम चूकने पर हम सड़क के किनारे बेंच पर बैठ गए।

नैनीताल की संध्या धीरे-धीरे उतर रही थी। रूई के रेशे से, भाप से बादल हमारे सिरों को छू-छूकर बेरोक घूम रहे थे। हलके प्रकाश और अँधियारी से रंग कर कभी वे नीले दिखते, कभी सफ़ेद और फिर ज़रा **अरुण**[1] पड़ जाते, जैसे हमारे साथ खेलना चाह रहे हों।

पाँच, दस, पंद्रह मिनट हो गए। मित्र के उठने का कोई इरादा न मालूम हुआ। मैंने झुँझलाकर कहा– "चलिए भी ....."

"अरे, ज़रा बैठो ....."

हाथ पकड़कर ज़रा बैठने के लिए जब ज़ोर से बैठा लिया गया, तो और चारा न रहा। **सनक**[2] से छुटकारा पाना आसान न था और ज़रा बैठना भी 'जरा' न था।

चुपचाप बैठे तंग हो रहा था, कुढ़ रहा था कि मित्र अचानक बोले– "देखो, वह क्या है?"

मैंने देखा कि कुहरे की सफ़ेदी में कुछ ही हाथ दूर से एक काली-सी मूर्ति हमारी तरफ आ रही थी। मैंने कहा–"होगा कोई"

तीन गज़ की दूरी से दिख पड़ा, एक लड़का, सिर के बड़े-बड़े बाल खुजलाता चला आ रहा था। नंगे पैर, नंगे सिर, एक मैली-सी कमीज़ लटकाए है। पैर उसके न जाने कहाँ पड़ रहे थे, और वह न जाने कहाँ जा रहा था, कहाँ जाना चाहता था; न दायाँ था, न बायाँ था। पास की **चुंगी**[3] की लालटेन के छोटे-से प्रकाश-वृत्त में देखा–कोई दस-बारह बरस का लड़का होगा। गोरे रंग का है, पर मैल से काला पड़ गया है, आँखें अच्छी, बड़ी, पर सूनी हैं। माथा जैसे अभी से झुर्रियाँ खा गया है।

1. लाल, 2. धुन, पागलपन, 3. कर वसूल करने के लिए बनाई गई चौकी

वह हमें न देख पाया, वह जैसे कुछ भी न देख रहा था। न नीचे की धरती, न ऊपर चारों ओर फैला हुआ कुहरा, न सामने का तालाब, और न एकाकी दुनिया। वह बस अपने निकट वर्तमान को देख रहा था।

मित्र ने आवाज़ दी– "ए!"

उसने अपनी सूनी आँखें फाड़ दीं।

"दुनिया सो गई, तू ही क्यों घूम रहा है ?"

बालक मूक, फिर भी बोलता हुआ–सा चेहरा लेकर खड़ा रहा।

"कहाँ सोएगा ?"

"यहीं कहीं"

"कल कहाँ सोया था ?"

"दुकान पर।"

"आज वहाँ क्यों नहीं ?"

"नौकरी से हटा दिया।"

"क्या नौकरी थी ?"

"सब काम; एक रुपया और जूठा खाना।"

"फिर नौकरी करेगा ?"

"हाँ।"

"बाहर चलेगा ?"

"हाँ।"

"आज क्या खाना खाया ?"

"कुछ नहीं।"

"अब खाना मिलेगा ?"

"नहीं मिलेगा।"

"यो ही सो जाएगा ?"

"हाँ।"

"कहाँ"

"यहीं कहीं।"

"इन्हीं कपड़ों में ?"

बालक फिर आँखों से बोलकर **मूक**[4] खड़ा रहा। आँखें मानो बोलती थीं- 'यह भी कैसा मूर्ख प्रश्न है!'

"माँ-बाप हैं ?"

"हाँ।"

"कहाँ ?"

"पंद्रह कोस दूर, गाँव में।"

"तू भाग आया?"

"हाँ।"

"क्यों ?"

"मेरे कई भाई-बहन हैं, सो भाग आया। वहाँ काम नहीं, रोटी नहीं। बाप भूखा रहता था और माँ भूखी रहती थी, रोती थी, सो भाग आया। एक साथी और था। उसी गाँव का था, मुझसे बड़ा। दोनों साथ यहाँ आए। वह अब नहीं है।"

"कहाँ गया ?"

"मर गया।"

बस ज़रा-सी उम्र में ही इसकी मौत से पहचान हो गई। मुझे अचरज हुआ, पूछा-"मर गया ?"

"हाँ, साहब ने मारा, मर गया।"

"अच्छा, हमारे साथ चल।"

वह साथ चल दिया-लौटकर हम वकील दोस्त के होटल पहुँचे।

"वकील साहब!"

वकील साहब होटल के कमरे से उतरकर आए। काश्मीरी दुशाला लपेटे थे, मोजे चढ़े पैरों में चप्पलें थीं। स्वर में हलकी झुँझलाहट थी, कुछ लापरवाही थी।

4. चुपचाप

''ओहो फिर आप! कहिए।''

''आपको नौकर की ज़रूरत थी न, देखिए यह लड़का है।''

''कहाँ से लाए ? इसे आप जानते हैं ?''

''जानता हूँ– यह बेईमान नहीं हो सकता।''

''अजी, ये पहाड़ी बड़े शैतान होते हैं। बच्चे-बच्चे में **अवगुण**[5] छिपे रहते हैं– आप भी क्या अज़ीब हैं उठा लाए कहीं से – लो जी यह नौकर लो।''

''मानिए तो, यह लड़का अच्छा निकलेगा।''

''आप भी ..... जी बस खूब हैं। ऐरे-गैरे को नौकर बना लिया जाए और अगले दिन वह न जाने क्या-क्या लेकर चंपत हो जाए।''

''आप मानते ही नहीं मैं क्या करूँ।''

''मानें क्या खाक। आप भी ..... जी अच्छा मज़ाक करते हैं। अच्छा, अब, हम सोने को जाते हैं।''

और वह चार रुपया रोज़ के किराए वाले कमरे में सजी **मसहरी**[6] पर सोने झटपट चले गए।

बालक कुछ ठहरा। मैं असमंजस में रहा। तब वह प्रेत गति से एक ओर बढ़ा और कुहरे में मिल गया। हम भी होटल की ओर बढ़े। हवा तीखी थी– हमारे कोटों को पार कर बदन में तीर-सी लगती थी।

सिकुड़ते हुए मित्र ने कहा– ''भयानक शीत है उसके पास कम-बहुत कम कपड़े ..... ।''

''यह संसार है यार!'' मैंने स्वार्थ की फ़िलासफ़ी सुनाई– ''चलो, पहले बिस्तर में गरम हो लो, फिर किसी और की चिंता करना।''

उदास होकर मित्र ने कहा– ''स्वार्थ! जो कहो, लाचारी कहो, निठुराई कहो– या **बेहयाई**[7]।''

दूसरे दिन नैनीताल स्वर्ग के किसी काले गुलाम पशु के दुलार का वह बेटा–वह बालक, निश्चित समय पर हमारे 'होटल डि पव' में नहीं आया। हम

---

5. दोष, बुराइयाँ 6. मच्छरदानी 7. बेशर्मी

अपनी नैनीताल-सैर खुशी-खुशी खत्म कर चलने को हुए। उस लड़के की आस लगाए बैठे रहने की ज़रूरत हमने न समझी।

मोटर में सवार होते ही यह समाचार मिला–पिछली रात, एक पहाड़ी बालक, सड़क के किनारे-पेड़ के नीचे, ठिठुरकर मर गया।

मरने के लिए उसे वही जगह, वही दस बरस, की उम्र और वही काले चिथड़ों की कमीज़ मिली। आदमियों की दुनिया ने बस यही उपहार उसके पास छोड़ा था।

पर बतलाने वालों ने बताया कि गरीब के मुँह पर, छाती, मुट्ठियों और पैरों पर, बर्फ़ की हल्की-सी-चादर चिपक गई थी, मानो दुनिया की बेहयाई ढँकने के लिए प्रकृति ने शव के लिए सफ़ेद और ठंडे कफ़न का प्रबंध कर दिया था।

जैनेंद्र कुमार